श्री दशमगुरु काव्यामृत सार

सिक्ख इतिहास माला के अनुपम पुष्प ।

[रचयिता—डा० सरदार जसवन्त सिंह]

प्रथम पुष्प ।

श्री गुरु नानकदेव जी—अब तक प्रकाशित जीवनियों में यह जीवनी एक विशेष स्थान रखती है और बड़ी खोज के साथ लिखी गई है । मूल्य १॥)

द्वितीय पुष्प ।

सिक्खों के गुरु—श्रीगुरु अंगददेव जी द्वितीय गुरु से लेकर नवें गुरु श्री गुरु तेग बहादुरजी तक अर्थात् आठों गुरुओं का जीवन चरित्र और उनकी अमृतवाणी । मूल्य १॥)

तृतीय पुष्प ।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी—यह जीवनी अब तक प्राप्त होने वाले प्राचीनतम और प्रारम्भिक आधारों पर लिखी गई है । गुरु जी की स्वयं की रचनाएँ भी देदी गई हैं । ४०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १॥)

चतुर्थ पुष्प ।

वीर खालसा—श्री गुरुगोविन्दसिंहजी से लेकर वर्तमानकाल तक । यह अनुपम ग्रन्थ न केवल सिक्खों ही के मनन करने की वस्तु है अपितु हिन्दु मात्र को इसे पढ़कर शक्ति संचय करना चाहिये । बलिदान के जीते जागते चित्र । मूल्य १॥)

अपूर्व प्रतिकार—प्रतिकार किसे कहते हैं ! उसका आदर्श कितना उच्च है, देखना हो तो इस पुस्तक को पढ़िये और अपने जीवन को स्वर्गीय आभा से भरिये । मूल्य ≈) आना

श्रीदशमगुरु काव्यामृतसार

अर्थात्

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

की

अमृत वाणी का

दिग् दर्शन ।

श्री गुरु नानकदेव सत्संग सभा,

जयपुर ।

१,०००] १९३५ ई० [मू० ॥)

(१०) शस्त्रनाम माला, (११) पख्याने त्रिया चरित्र, (१२) ज़फ़र नामा, (१३) हिकायतें, (१४) सर्वलोह प्रकाश ।

संख्या (१) से (१३) तक के ग्रन्थ सब एकत्रित किये हुए हैं और इनही को " दशम ग्रन्थ " नाम दिया हुआ है—अर्थात् दशमगुरुजी के ग्रन्थ । संख्या (१४) का ग्रन्थ अभी तक सर्व-साधारण में अप्रचलित है परन्तु सुरक्षित है । यह एक बृहत्काय ग्रन्थ होने के कारण अभी तक मुद्रित नहीं हो सका । इस में खालसा मत के सिद्धांत और वीरता के प्रकरण वर्णित हैं ।

अब उक्त दशमग्रन्थ में के ग्रन्थों से प्रस्तुत " श्री दशम-गुरु-काव्यामृत-सार " संग्रह में जिन जिन अंशों को लिया है उनको अति संक्षेप से बताते हैं । यथाः—

सो भी सारभरा बड़े उच्चभाव का है—"जब आव की औध निदान बनें, अति ही रण में तब जूझ मरौं"।

(५) "ज्ञान प्रबोध" से ४९ छन्द दिये गये हैं। इनमें भांति भांति के छन्दों में बड़े समारोह से ईश्वराधन किया है। यह कितना सुन्दर छन्द है:—

आतमा प्रधान जाहि सिद्धता सरूप ताहि,
बुद्धता विभूत जाहि सिद्धता सुभाव है।
× × × × ॥८॥४७॥

(६) "चौबीस अवतार" से ३९ छन्द संग्रह किये गए हैं। कुछ नमूने बड़े ही सुन्दर हैं:—

जब जब होत अरिष्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा॥
× × × । × × × ॥२॥
सीस दियो उन सिरं न दीना। रंच समान देहि करि चीना॥२६॥
पाइ गहे जबते तुमरे, तबते कोउ आँखि तरे नहिं आन्यों।
× × × × × ॥८६३॥

(७) "हजारे के शब्द" १० पद (भजन-गायन के) दिये हैं। सबही कितने भाव भरे सुन्दर गायनोपयोगी पद हैं।

(८) "सवैये" से सबही तैंतीस छन्द दे दिये हैं क्योंकि एक तो सबही उत्तम हैं फिर संख्या भी बड़ी नहीं। सुन्दर छन्द और उच्च आशय हैं।

(९) "त्रिया चरित्र" से एक तो "नृपकुंवरी का चरित्र" लिखा गया है। इससे गुरुजी का दृढ़ ब्रह्मचर्य प्रमाणित होता है।

और फिर "रणखंभकला का चरित्र" लिखा है जिसमें एक राजा की बेटी रणखंभकला ने अपने गुरु को उपदेश किया

कि ईश्वर मूर्तियों में ही नहीं है वह सर्व व्यापी और निराका है। और कपटी उपदेशकों की निंदा की है। यथाः

औरन उपदेश करै आपु ध्यान कौ न धरै,
लोगन को सदा त्याग धन को दृढ़ात हैं।
तेही धन लोभ ऊंच नींचन के द्वार द्वार,
लाज कौ त्यागि जेही तेही पै घीघात हैं॥
कहत पवित्र हम रहत अपवित्र खरे,
चाकरी मलेच्छन की कै कै टूक खात हैं।
बड़े असन्तोपी हैं कहावत सन्तोषी महा,
एक द्वार छांडि मांगि द्वारै द्वार जात हैं॥ १९॥

अंत में "विनती" के २६ छंद बहुत उत्तम हैं जिनमें बहुत से भक्ति और करुणा के हैं। प्रायः नित्य ही सिक्ख लोग इनका पाठ करते हैं।

संग्रह के अन्त में गुरु गोविंदसिंह जी की सभा के कवियों की नामावली देकर उनमें के ९ कवियों—१ अमृतराय, २ आलम शाह, ३ मंगल, ४ सारदा, ५ सुदामा, ६ सुन्दर, ७ सेनापति, ८ हंसराम, ९ हीर—के कुछ चुनेहुए और कुछ और फुटकर कवित्तादि दिये हैं जिनमें गुरु जी की प्रशंसा और गुणों का बखान है। अन्त में कुछ छंद कवि मेघसिंह और संतोपसिंह के भी दिये हैं। कवि संतोषसिंह के दो छंद नमूने के तौर पर यहाँ देते हैं—

पौन दीप गार पर, मार पर सिंह हैं ॥
सूर तमवृन्द पर, सूर रणवृन्द पर,
सूर दिती नन्द पर, दूजे नरसिंह हैं ।
काल सरबंस पर, दावा बन बंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर, श्री गोविंदसिंह हैं ॥ ७ ॥ *
छाय जाती एकता अनेकता बिलाय जाती,
होवती कुचीलता कतेबन कुरान की ।
पाप ही प्रपक्क जाते धरम धसक्क जाते,
बरन गरक्क जाते सहित विधान की ॥
देवी देव देहरे "सन्तोपसिंह" दूर होते,
रीति मिट जाती कथा वेदन पुरान की ।
श्री गुरु गोविंदसिंह पावन परम सूर,
मूरति न होती जो पै करुणानिधान की ॥ ९ ॥

इस प्रकार यह सारसंग्रह १२८ पृष्ठों पर, दिग्दर्शन रूप में साहित्य-प्रेमियों, गुरुभक्तों और देशहितैपियों के लाभ के लिये सम्पादक महाशय ने बहुत देख भाल कर प्रकाशित करा के सर्व साधारण के सामने धर दिया है । पाठक गण अपना मनोरंजन और आत्मगौरव तथा मनोन्नति करके लाभ के भागी हों ।

गुरु गोविन्दसिंह जी की कविता अनेक रूप धारिणी है । उनकी कविता को समझने के लिए यह बात सदा ध्यान में

* महाकवि चंद और भूषण के छंदों की समता का है, स्यात् उनसे भाव और कविता में बढ़ा हुआ है ।

रखनी चाहिये कि साधारण कवियों और उनकी सभा के कवियों की तरह वे कोई पेशेवाले कवि नहीं थे। कविता का गुण उनमें जन्म से ही था। और यह भी याद रखना चाहिए कि वे एक धर्म गुरु थे, वीर योद्धा थे और देश के लिये प्राण हथेली पर रखते थे। धर्म के द्रोहियों की अच्छी तरह खबर लेते थे। दीनों को धर्म के नाते अत्याचारियों से बचाते थे। परमात्मा के वे सच्चे और ध्रुव भक्त थे। प्रत्येक काम और विचार में ईश्वर का भाव सदा सामने रहता था। ऐसे धार्मिक पुरुष की कविता में कैसा रस व्याप्त होसकता है इस बात के समझने में कठिनाई नहीं है। धर्म का आस्वादन सर्वत्र मिलेगा। तथापि उनकी कविता एक कुशल कवि की कविता है। इसमें ओज, प्रसाद और माधुर्य यथास्थान भरे हुये हैं। छन्दों में रस, अलकार और चातुर्य्य हर जगह मिलते हैं।

(क) **ओज** गुण का उदाहरण यथाः—

खग खंड विहंडं, खलदल खंडं, अति रणमंडं, बरबंडं।
भुजदंड अखंडं, तेज प्रचंडं, जोति अमंडं, भान प्रभं॥
सुखसंतोंकरणं, दुरमतिदरणं, किलविषहरणं, असिसरणं।
जै जै जग कारण, सिस्ट उबारण, मम प्रतिपारण, जै तेगं॥२॥

(विचित्र नाटक)

पोपत है जल में थल में, पल में कल के नहिं कर्म बिचारैं।
दीनदयाल दयानिधि दोपन देखत है पर देत न हारैं ॥१।२४३॥

(अकाल स्तुति)

(ग) माधुर्य गुण का उदाहरण यथा :—

मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने अलि,
फिरत दिवाने बन डोलैं जिति तित ही।
कीर औ कपोत बिंब कोकिला कलापी बन,
लूटे फूटे फिरैं मन चैन हूँ न कित ही॥
दारिम दरकिगयौ पेखि दसनन पाँति,
रूप ही की क्रांति जग फैल रही सित ही।
ऐसी गुनसागर उजागर सुनागर है,
लीनों मन मेरो हर नैन कोर चित ही॥ ८९॥ *

(चंडी चरित्र नं० १)

गुरुजी की कविता का आस्वादन मात्र ही इस संग्रह से होगा। विशेष ज्ञान सर्व कविता के प्रकाशन से मिलेगा। वहीं रस, अलंकार, काव्यांगों की छटा को दिखाया जा सकता है। प्रेमी पाठक अभी तो इस थोड़े से ही संतोष करें। और इसी से "स्थाली पुलान्यायेन" गुरुजी की काव्यशक्ति और सद्भावों अनुमान करके लाभ के भागी हों।

---

* दैत्य ने राजा सुंभ के प्रति चंडी का रूप वर्णन किया है।

(चरित्र)

अब थोड़ा सा गुरु जी का चरित्र भी यहाँ दे दिया जाता है जिससे उनके संबन्धी अपेक्षित वा आवश्यक घटनाओं का परिचय हो सके।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी श्री गुरु नानकदेव से शिष्य परम्परा में दशम गुरु थे, (२) श्री अंगद देव (३) अमर दास (४) रामदास (५) अर्जुन देव (६) हरगोविंद (७) हरराय (८) हरकिशन और (९) तेग़ बहादुर, आदि गुरु नानक देव के पीछे और दशम गुरु गोविन्दसिंह के पहले हुए।

गुरु गोविन्द सिंह गुरु तेग़बहादुर के औरस पुत्र थे। इनकी माता का नाम गूजरी था। इनका जन्म पटने में मि० पोस सुदि ७ सं० वि० १७२३ में हुआ था जब इनके पिता आँबेर के राजा रामसिंह के साथ लड़ाई में आसाम में गये हुए थे। वहीं इनके जन्म की खबर मिली थी। आसाम से लौटने पर गुरु तेग़ बहादुर थोड़े समय तक पटने में रह कर पंजाब को चले गए थे। बालक गोविन्दसिंह कुछ वर्षों तक अपनी माता और दादी के पास पटने में रहे। वहीं इनका पालन पोषण हुआ और धर्म तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा मिली। फिर ये भी पंजाब गये। बालपन ही में गोविन्द ने अपनी कुशाग्रबुद्धि, धर्म प्रीति और वीरता का परिचय दिया। सब को यह भरोसा होगया कि यह सर्वगुण सम्पन्न धर्मगुरु,

की तालीम जारी रही । परन्तु पिता का सुख थोड़े ही दिन भोग पाए। बादशाह औरंगजेब का जुल्म पंजाब में बहुत अधिक फैल चुका था । धर्म की रक्षा के लिये गुरु तेगबहादुर बड़े धैर्य्य और वीरता तथा दृढ़ता से बादशाह जालिम के जुल्म से मि० मांगशिर सुदि ५ सं० वि० १७३२ में देहली में शहीद हुए। तब गोविन्दसिंह ९ वर्ष के बच्चे ही थे। उनके हृदय पर पिता के इस प्रकार बध किये जाने का बहुत गहरा असर पड़ा। तब ही से दुष्टों के निवारण करने के अनेक मनसूबे उन्होंने बांधे जिनको आगे चल कर अपनी जीवनी में उस अद्भुत शक्ति और चमत्कार से कर दिखाया कि आज तक संसार में उनका सत्कार्य्य और सत्कीर्त्ति अमर हैं और "खालसा" सम्प्रदाय का वह समुदाय भारतवर्ष में स्थापन किया कि जिसके जोड़का बिरला ही नर समाज भारतवर्ष ही में क्या इस संसार ही में हो तो हो। सिक्ख जाति की शक्ती की महानता गुरु गोविन्दसिंह के ही प्रभाव से अधिक बढ़ी थी । उनके पक्के सिद्धांतों ने ही इस शक्तिशाली जाति का गौरव बढ़ाया था ।

पिता के पीछे ये गुरु गादी पर विराजे । अच्छे गुरु होनहार अगुआ और नेता के सुलक्षण दिखाए। पुराने और नये सब सिक्खों को प्रतिष्ठा और प्रेम से अपनाया । शस्त्रास्त्र, सेना और सामान बढ़ाया । कुछ वर्षों में बड़ी उन्नति करली। आनन्दपुर को उन्नत कर दिखाया ।

सं० १७३५ में गुरुजी का जीतो देवी के साथ आनन्दपुर में विवाह हुआ ।

गुरु गोविन्दसिंह को शस्त्रों और सेना का बड़ा भारी शौक़ था। इनको वे बढ़ाते रहे। नक्कारे निशान बनाए। [illegible]

राजा डाह रखते परन्तु इनका कुछ न बिगाड़ सका। उन पर इनकी शक्ति का प्रभाव बढ़ता गया। कई तो इनके अनुयायी रहे और कई विरुद्ध।

नाहन के राजा मेदिनी प्रकाश को सहायता देकर उसकी दबी हुई भूमि गढ़वाल के राजा फ़तहशाह से दिलवाई। तब से मेदिनी प्रकाश इनका मुती रहा और इनके लिए यमुना के किनारे "पाउँटा" का स्थान और क़िला बनवादिया।

वहां के भयानक जंगल में महा भयानक "जयद्रथ" नाम के सिंह को गुरुजी ने ललकार कर मार गिराया जो किसी के वश में नहीं आता था।

कहलूर के राजा भीमचन्द से दबकर फ़तहशाह ने गुरुजी से उलटी राड़ की। परन्तु हारगया और भाग निकला।

माघ सुदि ४ सं० १७४३ में गुरुगोविंदसिंहजी के प्रथम पुत्र अजीतसिंह का जन्म हुआ।

भीमचन्द भी अब गुरुजी से मेल करने आगया। और जब राजालोगों ने बादशाह औरंगजेब को ख़िराज देने से इनकार किया तो इन पर बादशाह की फ़ौजकशी हुई। उसमें भीमचन्द आदि ने गुरुजी की सहायता चाही। नाहण के मुकाम पर लड़ाई हुई, उसमें गुरुजी की विजय हुई। अलिफ़खाँ और दूसरे राजा हार गये।

[वरखाँ चढ़ आया परन्तु वह भी गुरुजी से हार कर भाग गया । फिर दिलावरखाँ ने हुसैनखाँ को और सेना देकर भेजा। वह भी हार गया और गुरुजी और साथी राजाओं की विजय हुई । यों हार पर हार सुनकर बादशाह ने अपने शाहजादे मोअज्जम को पहाड़ी राजाओं पर कर वसूल करने को भेजा। परन्तु गुरुजी का ऐसा असर पड़ा कि शाहजादा और उसका सेनापति मिर्जाबेग गुरुजी के भक्त हो गये।

मि० माह सु० १ सं १७५३ को गुरुजी के तीसरा पुत्र जुझारसिंह उत्पन्न हुआ।

अब गुरुजी अपनी सेना और शक्ति को बढ़ाते रहे और धर्म का प्रचार और कई कौतुक और चमत्कार दिखाते रहे।

मि० काती सु० ११ सं० १७५५ को गुरुजी के चौथा पुत्र फतहसिंह प्रगट हुआ। यों गुरुजी के चार चमत्कारी पुत्र थे जो संसार में बड़े नाम पैदा कर गये जिनका कुछ चरित्र आगे आवैगा ।

अब गुरुजी ने "खालसा" सिक्ख समुदाय की सृष्टि की। यह सिक्खों का एक सुदृढ़ और सच्चे वशीभूत जाति बना देने का अद्भुत प्रयोग था। वैशाख सं० १७५६ में सब सिक्खों की बुलाईहुई बड़ी भारी सभा में गुरुजीने पांच सिर मांगे। विविध देशों के पांच पुरुषों ने सिर देना अंगीकार किया। ये पांचही पुरुष " पांच प्यारे " कहाए । फिर कड़ाह में शुद्ध जल अभिमंत्रित करके इन पांचों को अमृत पिलाया । इसमें गुरुपत्नी जीतोदेवी ने बताशे मिलाकर मीठा कर दिया। इनहीं पांच खालसा के आदि शिष्यों से स्वयम् गुरु जी भी खालसा बने और अमृत चक्खा।

फिर जोश फैला तो ५ पुरुष ख़ालसा हुए वे 'मुक्ते" कहाए। फिर १२५ और पुरुष भी ख़ालसा बने। फिर तो नदी के प्रवाह की तरह यह जोश फैलता गया और हजारों होकर लाखों नर नारी ख़ालसा बन गए। और यह सिद्धांत स्थिर किया:—

गुरु घर जन्म तुम्हारे होए। पिछले जाति बरण सब खोए।
चार बरण के एको भाई। धरम ख़ालसा पदवी पाई ॥
हिन्दू तुरक ते आहि निआरा। सिंह मजब अब तुमने धारा।
राखहु कच्छ, केश, किरपान*। सिंह नाम को यही निशान ॥

(पथ प्रकाश से)

और "वाहगुरूजी का ख़ालसा, वाहगुरू जी की फ़तह" यह वाक्य ख़ालसा धर्मवालों का मुख्य शब्द है जो बोलचाल वा पढ़ने लिखने में सर्वत्र सर्वदा बरता जाता है। ख़ालसा शब्द का अर्थ पवित्र, मुक्त और निराला है।

इस वीर मनुष्य समुदाय की उन्नति से पहाड़ी राजा और बादशाह भी शंकित हुए थे। राजाओं ने अपने दूत और बादशाह ने अपना दूत गुरु जी के पास भेजे थे जो वहां की सतयुगी राहो-रस्म देखकर उलटे अनुयायी बन गये थे। राजाओं को गुरु जी ने सोते से जगाया और अपने उपदेश में कहा कि "देखो! देश की क्या दुर्दशा हो रही है। दासता की बेड़ियों में देश जकड़रहा है। धर्म और मन्दिर आदि नष्ट किये जारहे हैं। इज्जत हुर्मत सब मिट्टी में मिलाई जारही है। बहू बेटियां छीनी जाती हैं। हजारों हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये जाते हैं।

जो मुसलमान नहीं बनते वे मार दिये जाते हैं। क्या यह जीना है ? ऐसे जीने से तो मरना ही अच्छा। मैंने यह खालसा पंथ चलाया है, यह धर्म की असली मूरत है। इसमें रुहानी ताक़त क़ायम रहकर देश में से दुष्टों का बल घटना चला जायगा। यह निर्भय वीर मण्डली देश को ऊंचा उठाएगी। जागो राजाओ! जागो! आवो नया जन्म लो!" इत्यादि अमृत वचन कहे। परन्तु कुछेक ने हिम्मत की बाकी बादशाह के कोप से डर गये, बादशाही जुल्म बहुत ज़ोर पर था।

बहुत से अच्छे अच्छे लोग गुरुजी के अनुयायी होते चले गये। काशी के राघोबा का पुत्र और उसकी कवित्री स्त्री और ग़ज़नी के आलिम मुंशी नंदलाल जो शाहज़ादा मुअज्ज़म के मीरमुंशी थे जिन्होंने गुरुजी की स्तुति में "बंदगीनामा" बनाया और उनका दीवान (काव्य संग्रह) 'दीवाने गोया" कहाता है। इत्यादि।

परन्तु कुछ पहाड़ी राजा गुरुजी से डाह रखते थे। आनन्दपुर पर उनका मुगल सेना सहित धावा हुआ। उसमें राजा परास्त हुए और भाग गये। गुरुजी की विजय हुई। इसमें गुरु जी के हाथ से वीर पैंदेखाँ मारा गया और बहुत से वीर खत्म होगये।

राजा लोग फिर गुरुजी पर चढ़ आये। इस युद्ध में राजा केसरीचंद आदि मारे गये और फिर गुरुजी विजयी हुए। यह युद्ध सं० १७५८ में हुआ था।

हार पर हार होने पर राजाओं ने सरहिंद के नवाब को कुछ दे दिवाकर उसे गुरुजी पर चढ़ा लाये। "निर्मोह" के मुकाम पर वह भी हार कर लौट गया और गुरुजी से संधि कर ली।

जब गुरुजी कुरुक्षेत्र की यात्रा को गये तब रास्ते में पाँच हज़ार मुग़ल सेना को धन देकर गुरुजी पर गुप्त रूप से पहाड़ी राजा चढ़ा लाये। परन्तु शाही सेना का एक सरदार "सैदबेग" तो गुरुजी का सेवक होगया और उलटा अपनी ही सेना से लड़ा और दूसरा सरदार "अलिफ़खाँ" भाग निकला। गुरुजी ने पहले से अपनी भी एक गुप्त सेना इनकी चालाकी को रोकने को तयार कर रक्खी थी। उसही से विजयी हुए।

जब गुरुगोविंदसिंह किसी तरह भी नहीं दबे तो सब पहाड़ी राजाओं ने अपनी तरफ़ से राजा अजमेरी चन्द को दक्षिण में बादशाह औरंगज़ेब के पास अर्ज़ी सहित भेजा और गुरुजी की भरपेट शिकायतें की गईं। बादशाह ने कोप करके दस हज़ार फ़ौज तो वहां से भेजी और सरहिंद के नवाब को हुक्म भेजा कि गोविंदसिंह को गिरिफ़्तार करके शाही दर्बार में रवाना करै। गुरुजी ने भी सब तरह से खूब तयारी की थी। आनन्दपुर में बड़ी भारी लड़ाई हुई। राजा हरिचन्द मारा गया। फ़ौज का अफ़सर सय्यदखां गुरुजी का चेला होकर बन में भाग गया। अजमेरी चंद घायल हुआ और उसका मुसाहिब मारा गया। और बहुत मुग़ल सेना और राजाओं की फ़ौज मारी गई। बिना अफ़सर की फ़ौज होजाने से शाही फ़ौज भाग छूटी। गुरुजी की यह बड़ी भारी फ़तह हुई।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

आवति कुदावति कुरंग ज्यों तुरंग को।

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ।

❀ जापु ❀

छप्पै छन्द—त्वप्रसादि ।

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह ॥
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जै ।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै ॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत ।
त्व सरबनाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमत ॥ १

भुजङ्ग प्रयात छन्द —त्वप्रसादि ।

नमस्त्वं अकाले । नमस्त्वं कृपाले ॥
नमस्त्वं अरूपे । नमस्त्वं अनूपे ॥ २ ॥
नमस्तं अभेखे । नमस्तं अलेखे ॥
नमस्तं अकाए । नमस्तं अजाए ॥ ३ ॥
नमो सर्ब काले । नमो सर्ब दिआले ॥
नमो सर्ब रूपे । नमो सर्ब भूपे ॥ १६ ॥
नमो काल काले । नमस्तस्त दिआले ॥
नमस्तं अवर्ने । नमस्तं अमर्ने ॥ २३ ॥
नमो सर्ब सोखं । नमो सर्ब पोखं ॥
नमो सर्ब करता । नमो सर्ब हरता ॥ २७ ॥

चाचरी छन्द—त्वप्रसादि ।

अरूप हैं । अनूप हैं ॥ अजू हैं । अभू हैं ॥ २९ ॥
अलेख हैं । अभेख हैं ॥ अनाम हैं । अकाम हैं ॥ ३० ॥

मधुभार छन्द—त्वप्रसादि ।

गुन गन उदार । महिमा अपार ॥
आसन अभंग । उपमा अनंग ॥ ८७ ॥
अनभउ प्रकास । निसदिन अनास ॥
आजान बाहु । साहान साहु ॥ ८८ ॥
मुनि मनि प्रनाम । गुन गन मुदाम ॥
अरबर अगंज । हरि नर प्रभंज ॥ १६० ॥
ओङ्कारि आदि । कथनी अनादि ॥
खल खंड ख्याल । गुर बर अकाल ॥ १६९ ॥

हरिबोलमना छन्द—त्वप्रसादि ।

करणालय हैं । अरि घालय हैं ॥
खल खंडन हैं । महि मंडन हैं ॥ १७० ॥
जगतेस्वर हैं । परमेस्वर हैं ॥
कलि कारन हैं । सर्ब उबारन हैं ॥ १७१ ॥
ब्रिस्वंभर हैं । करुणालय हैं ॥
नृप नाइक हैं । सर्ब पाइक हैं ॥ १८० ॥
परमातम हैं । सरबातम हैं ॥
आतम बस हैं । जस के जस हैं ॥ १८३ ॥

एक अच्छरी छन्द ।

अजै । अलै ॥ अभै । अबै ॥ १८८ ॥
अभू । अजू ॥ अनास । अकास ॥ १८९ ॥
अगंज । अभंज ॥ अलक्ख । अभक्ख ॥ १९० ॥
अकाल । दिआल ॥ अलेख । अभेख ॥ १९१ ॥

आदि पुरख अवगत अबिनासी।
लोक चतुर्दस जोति प्रकासी॥ १॥
हस्त कीट के बीच समाना।
राव रंक जिह इक सर जाना॥
अद्वै अलख पुरख अविगामी।
सब घट घट के अन्तरजामी॥ २॥
अलख रूप अछै अनभेखा।
राग रंग जिह रूप न रेखा॥
वर्न चिह्न सभ हूँ ते न्यारा।
आदि पुरख अद्वै अबिकारा॥ ३॥
वर्न चिह्न जिह जात न पाता।
सत्र मित्र जिह तात न माता॥
सभ ते दूरि सभन ते नेरा।
जल थल महीअल जाहि बसेरा॥ ४॥
अनहद रूप अनाहद बानी।
चरन सरन जिह बसत भवानी॥
ब्रह्मा बिसन अन्तु नहीं पायो।
नेत नेत मुख चार बतायो॥ ५॥
कोटि इन्द्र उपइन्द्र बनाए।
ब्रह्मा रुद्र उपाइ खपाए॥
लोक चतुर्दस खेल रचायो।
बहुर आप ही बीच मिलायो॥ ६॥
दानव देव फनिन्द अपारा।
गन्धर्व जच्छ रचे सुभचारा॥

कहूँ जच्छ गन्धर्व उरग कहूँ विद्याधर,
कहूँ भए किन्नर पिसाच कहूँ प्रेत हो।
कहूँ हुइकै हिन्दुआ गाइत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाँग देत हो॥
कहूँ कोक काव के पुरान को पढ़त मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ विपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ २॥१२॥

कहूँ देवतान के दिवान मैं बिराजमान,
कहूँ दानवान को गुमान मत देत हो।
कहूँ इन्द्र राजा को मिलत इन्द्र पदवी सी,
कहूँ इन्द्र पदवी छिपाइ छीन लेव हो॥
कतहूँ बिचार अविचार को विचारत हो,
कहूँ निजनार परनार के निकेत हो।
कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउ विपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ३॥१३॥

कहूँ शस्त्र धारी कहूँ विद्या के विचारी,
कहूँ मारत अहारी कहूँ नार के निकेत हो।
कहूँ देव बानी कहूँ सारदा भवानी,
कहूँ मंगला मृड़ानी कहूँ स्याम कहूँ सेत हो॥
कहूँ धर्म धामी कहूँ सर्ब ठउर गामी,
कहूँ जती कहूँ कामी कहूँ देत कहूँ लेत हो।
कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउ विपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ४॥१४

कहूँ जच्छ गन्धर्ब उरग कहूँ बिद्याधर,
कहूँ भए किन्नर पिसाच कहूँ प्रेत हो।
कहूँ हुइकै हिन्दुआ गाइत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाँग देत हो॥
कहूँ कोक काव के पुरान को पढ़त मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो।
कहूँ वेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ २॥१२॥

कहूँ देवतान के दिवान मैं बिराजमान,
कहूँ दानवान को गुमान मत देत हो।
कहूँ इन्द्र राजा को मिलत इन्द्र पदवी सी,
कहूँ इन्द्र पदवी छिपाइ छीन लेव हो॥
कतहूँ बिचार अविचार को बिचारत हो,
कहूँ निजनार परनार के निकेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ३॥१३॥

कहूँ शस्त्र धारी कहूँ बिद्या के बिचारी,
कहूँ मारत अहारी कहूँ नार के निकेत हो।
कहूँ देव बानी कहूँ सारदा भवानी,
कहूँ मंगला मृड़ानी कहूँ स्याम कहूँ सेत हो॥
कहूँ धर्म धामी कहूँ सर्ब ठउर गामी,
कहूँ जती कहूँ कामी कहूँ देत कहूँ लेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ४॥१४॥

कहूँ जटाधारी कहूँ कंठी धरे ब्रह्मचारी,
कहुँ जोग साधी कहूँ साधना करत हो।
कहूँ कान फारे कहूँ डंडी हुइ पधारे,
कहूँ फूक फूक पावन को पृथी पै धरत हो॥
कतहूँ सिपाही हुइकै साधत सिलाह्न कौ,
कहूँ छत्री हुइकै अर मारत मरत हो।
कहूँ भूम भार कौ उतारत हो महाराज,
कहूँ भव भतन की भावना भरत हो॥ ५॥१५॥

कहूँ गीतनाद के निदान कौ बतावत हो,
कहूँ नृतकारी चित्रकारी के निधान हो।
कतहूँ पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो,
कतहूँ मयूख ऊख कहूँ मद पान हो॥
कहूँ महासूर हुइकै मारत मवासन कौ,
कहूँ महादेव देवतान के समान हो।
कहूँ महादीन कहूँ द्रव्य के अधीन,
कहूँ विद्या मैं प्रवीन कहूँ भूम कहूँ भान हो॥ ६॥१६॥

कहूँ अकलंक कहूँ मारत मयंक,
कहूँ पूरन प्रजंक कहूँ सुद्धता की सार हो।
कहूँ देव धर्म कहूँ साधना के हर्म,
कहूँ कुतस्त कुकर्म कहूँ धर्म के प्रकार हो॥
कहूँ पउनहारी कहूँ विद्या के विचारी,
कहूँ जोगी जती ब्रह्मचारी नर कहूँ नार हो।
कहूँ छत्र धारी कहूँ छाला धरे छैल भारी,
कहूँ छकचारी कहूँ छल के प्रकार हो॥ ७॥१७॥

कहूँ गीत के गवैया कहूँ बेन के बजैया,
कहूँ नृत के नचैया कहूँ नर को अकार हो।
कहूँ वेद बानी कहूँ कोक की कहानी,
कहूँ राजा कहूँ रानी कहूँ नार के प्रकार हो॥
कहूँ बेन के बजैया कहूँ धेन के चरैया,
कहूँ लाखन लवैया कहूँ सुन्दर कुमार हो।
सुद्धता की सान हो कि सन्तन के प्रान हो कि,
दाता महादान हो कि निर्दोखी निरंकार हो॥८॥१८॥

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो,
कि भूपन के भूप हो कि दाता महा दान हो।
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया,
रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महा मान हो॥
विद्या के विचार हो कि अद्वै अवतार हो कि,
सिद्धता की सूरति हो कि सुद्धता का सान हो।
जोबन के जाल हो कि काल हूँ के काल हो कि,
सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो॥९॥१९॥

कहूँ ब्रह्मवाद कहूँ विद्या को विखाद,
कहूँ नाद को ननाद कहूँ पूरन भगत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ विद्या की प्रतीत,
कहूँ नीत अउ अनीत कहूँ ज्वाला सी जगत हो॥
पूरन प्रताप कहूँ इकाती को जाप कहूँ,
ताप को अताप कहूँ जोग ते डिगत हो।
कहूँ वर देत कहूँ छल सिउ छिनाइ लेत,
सर्व काल सर्व ठउर एक से लगत हो॥ १०

तीरथ नान दया दम दान,
सुसंजम नेम अनेक विसेखै।
वेद पुरान कतेब कुरान,
जिमीन जमान सबान के पेखै॥
पउन अहार जती जत धार,
सबै सुविचार हजारक देखै।
श्री भगवान भजे बिनु भूपति,
एक रती बिनु एक न लेखै॥४॥

सुद्ध सिपाह दुरन्त दुबाह,
सुसाजि सनाह दुजान दलैंगे।
भारी गुमान भरे मन मैं,
कर परबत पंख हले न हलैंगे॥
तोर अरीन मरोर मवासन,
माते मतंगन मान मलैंगे।
श्री पत श्री भगवान क्रिपा बिनु,
त्याग जहानु निदान चलैंगे॥५॥

बीर अपार बडे बरिआर,
अबिचारहिं सार की धार भछैया।
तोरत देस मलिन्द मवासन,
माते गजान के मान मलैया॥
गाढ़े गढ़ान के तोड़न हार,
सु बातन ही चक चार लवैया।
साहिब श्री सभ को सिर नाइक,
जाचिक अनेक सु एक दिवैया॥६॥

काहूँ लै पाहन पूज धर्यो सिर,
काहूँ लै लिंगु गरे लटकायो।
काहूँ लखिओ हरि अवाची दिसा महि,
काहूँ पछाह को सीस निवायो॥
कोऊ बुतान कौ पूजत है पसु,
कोऊ मृतान कौ पूजन धायो।
कूर क्रिया उरझ्यो सभ ही जगु,
श्री भगवान को भेदु न पायो॥१०॥३०॥

त्वप्रसादि—तोमर छन्द।

हरि जन्म मरन विहीन। दस चार चार प्रवीन॥
अकलंक रूप अपार। अनछिज्ज तेज उदार॥१॥३१॥
अनभिज्ज रूप दुरन्त। सभ जगत भगत महन्त॥
जस तिलक भूभृत भान। दस चार चार निधान॥२॥३२॥
जिह अंड ते ब्रहमण्ड। कीने सुचौदह खण्ड॥
सभ कीन जगत पसार। अव्यक्त रूप उदार॥७॥३७॥
जिह कोटि इन्द्र नृपार। कई ब्रह्म बिसन बिचार॥
कई राम कृसन रसूल। बिनु भगत को न कबूल॥८॥३८॥
कई सिन्ध बिन्ध नगिन्द्र। कई मच्छ कच्छ फनिन्द्र॥
कई देव आदि कुमार। कई कृसन बिसन अवतार॥९॥३९॥
कई इन्द्र बार बुहार। कई बेद अउ मुख चार॥

त्वप्रसादि—कवित्त ।

खूक मलहारी गज गदहा विभूत धारी,
गिदुआ मसान बास करिओई करत है ।
घुग्घू मटवासी लगे डोलत उदासी,
मृग तरवर सदीव मौन साधेई मरत है ॥
बिन्द के सधैया ताहि हीज की बडैया देत,
बन्दरा सदीव पाइ नागेई फिरत है ।
अंगना अधीन काम क्रोध में प्रबीन,
एक ज्ञान के बिहीन छीन कैसे कै तरत है ॥ १ ॥७१॥
भूत बनचारी छित छउना सभै दूधा धारी,
पउन के अहारी सुभुजंग जानियतु है ।
तृण के भछैया धन लोभ के तजैया,
तेतो गऊअन के जैया बृख भैया मानियतु है ॥
नभ के उडैया ताहि पंछी की बडैया देत,
बगुला बिड़ाल बृक ध्यानी ठानियतु है ।
जेते बडे ज्ञानी तिनो जानी पै बखानी नाहि,
ऐसे न प्रपंच मन भूल आनियतु है ॥ २ ॥७२॥
भूम के बसैया ताहि भूचरी के जैया कहै,
नभ के उडैया सो चिरैया कै बखानियै ।
फल के भछैया ताहि बाँदरी के जैया कहैं,
आदिस फिरैया तेतो भूत कै पछानियै ॥
जल के तरैया को गंगेरी सी कहत जग,
आग के भछैया सो चकोर सम मानियै ।
सूरज सिवैया ताहि कउल की बडाई देत,
चन्द्रमा सिवैया कौ कवी कै पहिचानियै ॥ ३ ॥७३॥

नारायण कच्छ मच्छ तिन्दुआ कहत सभ,
कउल नाभ कउल जिह ताल मैं रहतु है।
गोपीनाथ गूजर गुपाल सबै धेनचारी,
रिखी केस नाम कै महन्त लहियतु है॥
माधव भवर औ अटेरू को कन्हैया नाम,
कंस को बधैया जमदूत कहियतु है।
मूढ़ रूढ़ पीटत न गूढ़ता को भेद पावै,
पूजत न ताहि जाके राखे रहियतु है॥ ४ ॥७४॥

विस्वपाल जगत काल दीन दिआल बैरी साल,
सदा प्रतिपाल जमजाल ते रहत है।
जोगी जटाधारी सती साचे बडे ब्रह्मचारी,
ध्यान काज भूख प्यास देह पै सहत है॥
निउली करम जल होम पावक पवन होम,
अधो मुख एक पाइ ठाढे न बहत है।
मानव फनिन्द देव दानव न पावैं भेद,
बेद औ कतेब नेत नेत कै कहत है॥ ५ ॥७५॥

नाचत फिरत मोर बादर करत घोर,
दामनी अनेक भाउ करिओई करत है।
चन्द्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज,
इन्द्र सो न राजा भव भूम को भरत है॥
सिव से तपस्वी आदि ब्रह्मा से न बेद चारी,
सनत कुमार सी तपस्या न अनत है।
ज्ञान के बिहीन काल फास के अधीन सदा,
जुगन की चउकरी फिराए ई फिरत है॥ ६ ॥७६॥

एक शिव भए एक गए एक फेर भए,
रामचन्द्र कृष्न के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रह्मा अरु विसन केते वेद औ पुरान केते,
सिमृति समूहन कै हुइ हुइ वितए हैं॥
मौनदी मदार केते असुनी कुमार केते,
अंसा अवितार केते काल बस भए हैं।
पीर औ पिकाँवर केते गने न परत एते,
भूम ही ते हुइ कै फेरि भूमि ही मिलए हैं॥ ७ ॥७७॥

जोगी जती ब्रह्मचारी वडे वडे छत्र धारी,
छत्र ही की छाया कई कोस लौं चलत हैं।
वडे वडे राजन के दावति फिरति देस,
वडे वडे राजनि के दर्प को दलत है॥
मान से महीप औ दिलीप कै से छत्र धारी,
वडो अभिमान भुजदण्ड को करत है।
दारा से दिलीसर द्रजोधन से मान धारी,
भोग भोग भूम अन्त भूम मैं मिलत है॥ ८ ॥७८॥

सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस,
पोसती अनेकदा निवावत है सीस कौ।
कहा भयो मल्ल जौ पै काढत अनेक डंड,
सो तौ न डंडौत अष्टाँग अथतीस कौ॥
कहा भयो रोगी जो पै डार्यो रह्यो उर्ध मुख,
मन ते न मूँड निहरायो आद ईस कौं।
कामना अधीन सदा दामना प्रवीन,
एक भावना विहीन कैसे पावै जगदीस कौ॥९॥७९॥

सीस पटकत जाके कान में खजूरा धसै,
मूंड छटकत मित्र पुत्र हूं के सोक सों ।
आक को चरैया फल फूल को भछैया,
सदा बन को भ्रमैया अउर दूसरो न बोक सों ॥
कहा भयो भेड जो घसत सीस बृछन सों,
माटी को भछैया बोल पूछ लीजै जोक सों ।
कामना अधीन काम क्रोध में प्रबीन,
एक भावना बिहीन कैसे भेटैं परलोक सों ॥१०॥८०॥

नाचिओई करत मोर दादर करत सोर,
सदा घन घोर घन करिओई करत है ।
एक पाइ ठाढे सदा बन में रहत बृच्छ,
फूक फूक पाव भूम स्रावग धरत हैं ॥
पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करैं,
काग अउर चील देस देस बिचरत हैं ।
ग्यान के बिहीन महादान में न हूजै लीन,
भावना बिहीन दीन कैसे कै तरत हैं ॥११॥८१॥

जैसे एक स्वांगी कहूं जोगीआ बैरागी बनै,
कबहूं सन्यास भेस बनकै दिखावई ।
कहूं पउनहारी कहूं बैठे लाइ तारी,
कहूं लोभ की खुमारी सों अनेक गुन गावई ॥
कहूं ब्रह्मचारी कहूं हाथ पै लगावै बारी,
कहूं डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावई ।
कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सों,
ग्यान के बिहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई ॥१२॥८२॥

पञ्च बार गीदर पुकार पर सीतकाल,
कुञ्चर औ गदहा अनेकदा पुकारही।
कहा भयो जो पै कलवत्र लीओ काँसी बीच,
चीर चीर चोरटा कुठारन सौं मार ही॥
कहा भयो फासी डार बूडिओ जड़ गंग धार,
डार डार फास ठग मार मार डारही।
डूबे नर्कधार मूढ़ ज्ञान के बिना विचार,
भावना विहीन कैसे ज्ञान को विचार ही॥१३॥८३॥

ताप के सहे ते जो पै पाइऐ अताप नाथ,
तापना अनेक तन घाइल सहत है।
जाप के किए ते जो पै पायत अजाप देव,
पूदना सदीव तुहीं तुहीं उच्चरत है॥
नभ के उडे ते जो पै नाराइण पाइयत,
अनल अकास पंछी डोलवो करत है।
आग मैं जरे ते गत राँड की परत कर,
पताल के वासी किउँ भुजंग न तरत है॥१४॥८४॥

कोऊ भयो मुँडिया सन्यासी कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जतियन मानवो।
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानवो॥
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानवो।
एक ही की सेव सभ ही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोत न जानवो॥१५॥८५॥

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है ।
देवता अदेव जच्छ गन्धर्ब तुरक हिन्दू,
न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाउ है ॥
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान,
खाक बाद आतस औ आब को रलाउ है ।
अल्लह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है ॥१६॥८६॥

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
न्यारे न्यारे हुइकै फेरि आग मैं मिलाहिंगे ।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है,
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिंगे ॥
जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत है,
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिंगे ।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही मैं समाहिंगे ॥१७॥८७॥

केते कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ,
केते अच्छ वच्छ हुइ सपच्छ उड जाहिंगे ।
केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करैंगे भच्छ,
केतक प्रतच्छ हुइ पचाइ खाइ जाहिंगे ॥
जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा,
काल के बनाइ सबै काल ही चबाहिंगे ।
तेज जिउँ अतेज मैं अतेज जैसे तेज लीन,
ताही ते उपज सबै ताही मैं समाहिंगे ॥१८॥८८॥

कूकत फिरत केते रोवत मरत केते,
जल मैं डुबत केते आग मै जरत हैं।
केते गंग वासी केते मदीना मक्का निवासी,
केतक उदासी के भ्रमाएई फिरत हैं॥
करवत सहत केते भूम मैं गडत केते,
सूआ पै चढ़त केते दूख कउ भरत हैं।
गैन मैं उडत केते जल मैं रहत केते,
ज्ञान के विहीन जक जारेई मरत हैं॥१९॥८९॥
सोध हारे देवता बिरोध हारे दानो वडे,
बोध हारे बोधक प्रबोध हारे जापसी।
घस हारे चन्दन लगाइ हारे चोआ चार,
पूज हारे पाहन चढ़ाइ हारे लापसी॥
गाह हारे गोरन मनाइ हारे मढ़ी मट्ट,
लीप हारे भीतन लगाइ हारे छापसी।
गाइ हारे गंधर्ब बजाइ हारे किन्नर सभ,
पच हारे पण्डत तपन्त हारे तापसी॥२०॥९०॥

त्वप्रसादि—भुजंग प्रयात छन्द।

न रागं न रंगं न रूपं न रेखं।
न मोहं न क्रोहं न द्रोहं न द्वैखं॥
न कर्मं न भर्मं न जन्मं न जातं।
न मित्रं न सत्रं न पित्रं न मातं॥ १ ॥ ९१ ॥
न नेहं न गेहं न कामं न धामं।
न पुत्रं न मित्रं न सत्रं न भामं॥
अलेखं अभेखं अजोनी सरूपं।
सदा सिद्धदा बुद्धदा बृद्ध रूपं॥ २ ॥ ९२ ॥

कहूँ अच्छरा पच्छरा मच्छरा हो।
कहूँ बीर बिद्या अभूतं प्रभा हो॥
कहूँ छैल छाला धरे छत्र धारी।
कहूँ राज साजं धिराजाधिकारी॥ २६ ॥११६॥
नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध दाता।
अछेदी अछै आदि अद्वै बिधाता॥
न त्रस्तं न भ्रस्तं समस्तं सरूपे।
नमस्तं नमस्तं तुअस्तं अभूते॥ ३० ॥१२०॥

त्वप्रसादि—पाधड़ी छन्द।

अव्यक्त तेज अनभउ प्रकास।
अच्छै सरूप अद्वै अनास॥
प्रकास तेज अनखुट भण्डार।
दाता दुरन्त सरबं प्रकार॥ १ ॥ १२१ ॥
कई नेह देह कई गेह वास।
कई भ्रमत देस देसन उदास॥
कई जल निवास कई अगन ताप।
कई जपत उर्ध लटकन्त जाप॥ १८ ॥१३८॥
कई जपत जोग कलपं प्रजन्त।
नहीं तदप तास पायत न अन्त॥
कई करत कोट बिद्या बिचार।
नही तदप दृष्ट देखे मुरार॥ १६ ॥१३६॥
बिन भगत सकत नहीं परत पान।
बहु करत होम अर जग्य दान॥
बिन एक नाम इक चित्त लीन।
फोकट सर्ब धर्मा बिहीन॥ २० । १४०॥

त्वप्रसादि—नराज छन्द ।

अगंज आदि देव है अभंज भंज जानिऐ ।
अभूत भूत है सदा अगंज गंज मानिऐ ॥
अदेव देव है सदा अभेव भेव नाथ है ।
समस्त सिद्ध वृद्धदा सदीव सर्ब साथ है ॥ १ ॥१६१॥

न जन्त्र मैं न तन्त्र मैं न मन्त्र बसि आवई ।
पुरान औ कुरान नेत नेत कै बतावई ॥
न कर्म मैं न धर्म मैं न भर्म मैं बताइऐ ।
अगञ्ज आदि देव है कहो सु कैस पाइऐ ॥५॥१६५॥

जिमी जमान के बिखै समस्त एक जोत है ।
न घाट है न बाढ है न घाट बाढ होत है ॥
न हान है न बान है समान रूप जानिऐ ।
मकीन औ मकान अप्रमान तेज मानिऐ ॥ ६ ॥१६६॥

गजाधपी नराधपी करन्त सेव है सदा ।
सितस्तुती तपस्पती बनस्पती जपस्सदा ॥
अगस्त आदि जे बडे तपस्तपी बिसेखिऐ ।
बिअंत बिअंत बिअंत को करन्त पाठ पेखिऐ ॥१६।१७६॥

अगाध आद देव की अनाद बात मानिऐ ।
न जात पात मन्त्र मित्र सत्र स्नेह जानिऐ ॥
सदीव सरब लोक के कृपाल खिआल मैं रहै ।
तुरन्तद्रोह देह के अनन्त भाँत सो दहै २०॥ १ ॥८०॥

जैसि जूनि इक दैत बखनियत।
त्यों इक जूनि देवता जनियत॥
जैसे हिन्दु आन तुरकाना।
सभहिन सीस काल जरवाना॥ १०३॥
कबहूँ दैत देवतन मारैं।
कबहूँ दैतन देव संहारैं॥
देव दैत जिन दोउ संहारा।
वहै पुरख प्रतिपाल हमारा॥ १०४॥

अड़िल।

इन्द्र उपिन्द्र दनिन्द्रहि जौन संहारयो।
चन्द्र कुबेर जलिन्द्र अहिन्द्रहि मारयो॥
पुरी चौदहूँ चक्र जवन सुत लीजियै।
हो नमस्कार ताही कौ गुरु करि कीजियै॥ १०५॥

दिज बाच—

चौपई।

बहु बिधि बिप्रहि कौ समभायो।
पुनि मिस्रहि अस भाखि सुनायो॥
जे पाहिन की पूजा करि हैं।
ताके पाप सकल सिव हरि हैं॥ १०६॥
जे नर सालिग्राम कह स्यै हैं।
ताके सकल पाप का छै हैं॥
जो इह छाडि अवर कह स्यै हैं।
ते नर महाँ नरक महि जै हैं॥ १०
जे नर कछु धन बिप्रहि दै हैं
आगे माँग बरस गुनो लै हैं॥

लोभता के जए हैं कि ममता के भए हैं ए,
सूमता के पुत्र कैधौं दरिद्रावतार हैं ॥ ११२ ॥

चौपई ।

जो इन मन्त्र जन्त्र सिधि होई ।
दर दर भीख न माँगै कोई ॥
एकै मुख ते मन्त्र उच्चारैं ।
धन सौं सकल धाम भर डारैं ॥ ११४ ॥
राम कृष्न ए जिनै बखानैं ।
सिव ब्रह्मा ए जाहि प्रमानैं ॥
ते सभही श्री काल संहारे ।
काल पाइ कै बहुरि सवारे ॥ ११५ ॥
केते रामचन्द अरु कृष्ना ।
केते चतुरानन सिव बिसना ॥
चन्द सूरज ए कवन विचारे ।
पानी भरत काल के द्वारे ॥ ११६ ॥

दोहरा ।

स्राप राछसी के दए, जो भयो पाहन जाइ ।
ताहि कहत परमेस्र तैं, मन महि नहीं लजाइ ॥ ११८ ॥

दिज बाच—

चौपई ।

तब दिज अधिक कोप ह्वै गयो ।
भरभराइ ठाढा उठि भयो ॥
अब मैं इह राजा पै जैहौं ।
तहाँ बाँधि करि तोहि मँगैहौं ॥ ११६ ॥

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

बिनती ।

चौपई ।

धन्य धन्य लोगन के राजा ।
दुष्टन दाह गरीब निवाजा ॥
अखिल भवन के सिरजनहारे ।
दास जानि मुहि लेहु उबारे ॥ ३७६ ॥
हमरी करहु हाथ दै रच्छा ।
पूरन होइ चित्त की इच्छा ॥
तव चरनन मन रहै हमारा ।
अपना जान करो प्रतिपारा ॥ ३७७ ॥

हमरे दुष्ट सभै तुम घावहु ।
आपु हाथ दै मोहि बचावहु ॥
सुखी बसै मोरो परिवारा ।
सेवक सिख्य सभै करतारा ॥ ३७८ ॥

मो रच्छा निजु कर दै करियै ।
सभ बैरिन को आज संहरियै ॥
पूरन होइ हमारी आसा ।
तोरि भजन की रहै प्यासा ॥ ३७९ ॥
तुमहि छाँडि कोइ अवर न ध्याऊँ ।
जो बर चहौं सु तुम ते पाऊँ ॥
सेवक सिख्य हमारे तारियहि ।
चुनि चुनि सत्रु हमारे मारियहि ॥ ३८० ॥

घट घट के अन्तर की जानत।
भले बुरे की पीर पछानत॥
चींटी ते कुञ्चर अस्थूला।
सभ पर कृपा दृष्टि कर फूला॥ ३८७॥

सन्तन दुख पाए ते दुखी।
सुख पाए साधन के सुखी॥
एक एक की पीर पछानै।
घट घट के पट पट की जानै॥ ३८८॥

जब उदकरख करा करतारा।
प्रजा धरत तब देह अपारा॥
जब आकरख करत हो कबहूँ।
तुम मैं मिलत देह धर सबहूँ॥ ३८९॥

जेते बदन सृष्टि सब धारैं।
आप आपनी बूझि उचारैं॥
तुम सभ ही ते रहत निरालम।
जानत बेद भेद अर आलम॥ ३९०॥

निरङ्कार निर्विकार नृलम्भ।
आदि अनील अनादि असम्भ॥
ताका मूढ़ उचारत भेदा।
जाको भेव न पावत बेदा॥ ३९१॥

ताको करि पाहन अनुमानत।
महा मूढ़ कछु भेद न जानत॥
महादेव को कहत सदा शिव।
निरङ्कार का चीनत नहिं भिव॥ ३९२॥

घट घट के अन्तर की जानत।
भले बुरे की पीर पछानत॥
चींटी ते कुञ्चर अस्थूला।
सभ पर कृपा दृष्टि कर फूला॥ ३८७॥

सन्तन दुख पाए ते दुखी।
सुख पाए साधन के सुखी॥
एक एक की पीर पछानै।
घट घट के पट पट की जानै॥ ३८८॥

जब उदकरख करा करतारा।
प्रजा धरत नब देह अपारा॥
जब आकरख करत हो कबहूँ।
तुम मैं मिलत देह धर सबहूँ॥ ३८९॥

जेते बदन सृष्टि सब धारै।
आप आपनी बूझि उचारै॥
तुम सभ ही ते रहत निरालम।
जानत बेद भेद अर आलम॥ ३९०॥

निरङ्कार निर्विकार नृलम्भ।
आदि अनील अनादि असम्भ॥
ताका मूढ़ उचारत भेदा।
जाको भेव न पावत बेदा॥ ३९१॥

ताको करि पाहन अनुमानत।
महा मूढ़ कछु भेद न जानत॥
महादेव को कहत सदा सिव।
निरङ्कार का चीनत नहिं भिव॥ ३९२॥

कृपा दृष्टि तव जाँहिं निहरिहो।
ताके ताप तनक महिं हरि हो॥
ऋद्धि सिद्धि घर मों सभ होई।
दुष्ट छाह छ्वै सकै न कोई॥ ३९९॥

एक बार जिन तुम्हैं सँभारा।
काल फाँस ते ताहि उबारा॥
जिन नर नाम तिहारो कहा।
दारिद दुष्ट दोख तें रहा॥ ४००॥

खड्ग केत मैं सरनि तिहारी।
आपु हाथ दै लेहु उबारी॥
सरब ठौर मों होहु सहाई।
दुष्ट दोख ते लेहु बचाई॥४०१॥७५५१॥

दरबारी कवियों की रचनाएँ ।

अब आगे बरनन करौं, कवि जि रहैं गुरु पास ।
सुजस कवित्तन महिं करयो, लेत भए धन रास ॥
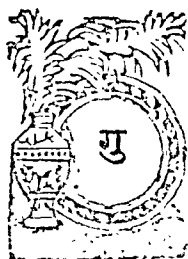
गुरुजी के दरबार में ५२ कवि रहते थे। यह गिन्ती घटती बढ़ती भी रहती थी। उन सब कवियों के नाम इस प्रकार हैं। अचल दास, अणी राय, अमृत राय, अली हुसेन, अल्लू, आलम शाह, आसासिंह, ईश्वरदास, उदयराय, कलुआ, कुवरेश, खान चन्द, गुणिया, गुरुदास, गोपाल, चन्द, चन्दह, जमाल, टहकन, दयासिंह, धर्मचन्द, धर्मसिंह, धन्नासिंह, ध्यानसिंह, नन्दलाल, नन्दसिंह, नानू, निश्चलदास, निहालचन्द, पिण्डीमल, बल्लभदास, बल्लू, बिधीचन्द, नृपा, ब्रजलाल, बुलन्द, मथुरादास, मदनगिरि, मदनसिंह, मद्दू, मल्लू, मानचन्द, मानदास, मालासिंह, मङ्गल, रामचन्द, रावल, रोशनसिंह, लक्खासिंह, सारदा, सुक्खासिंह, सुकदेव, सुखसू, सुनिया, सुदामा, सुन्दर, सेनापति, सोहन, हंसराम, हीर ।

और इसके केवल ६२ पृष्ठ पीछे से कवि सन्तोसिंह जी को वहाँ से मिले थे जिन में से कुछ कवियों की रचनाएँ आगे दी जाती हैं। यह सब गुरु दरबार के वैभव का एक ऐतिहासिक प्रमाण हैं।

(१) कवि अमृत राय।

जाही ओर जाऊँ, अति आदर तहाँ ते पाऊँ,
तेरे गुन गन को अगाऊँ गनै सेस जू।
हीर चीर मुकता जे देत दिन प्रति दान,
तिनै देख देख अभिलाखति धनेस जू॥
गुनन में गुनी कवि "अमृत" पढैया मेरो,
जब इनै हेरो प्यार कीजै अमरेस जू।
श्री गुरू गोविन्द सिंह छीर निधि पार भई,
कीरति तिहारी तुम्हैं कहि कै सन्देस जू॥

(२) कवि आलमशाह।

सोभा हूँ के सागर नवल नेह नागर हैं,
बल भीम सम, सील कहाँ लौं गिनाइयै।
भूप के विभूखन, जु दूखन के दूखन,
समूह सुख हूँ के सुख देखे तें अघाइयै॥
हिम्मत निधान, आन दान को बखानै?
जानै "आलम" तमाम जाम आठों गुन गाइयें।
प्रबल प्रतापी पातिसाहु गुरु गोविन्द जी,
भोज की सी मौज तेरे रोज रोज पाइयें॥

(३) मङ्गल कवि।

मंगल कवि ने महाभारत के शल्य पर्व का भाषानुवाद किया था जो कि संवत् १७५३ वैसाख त्रयोदशी मंगलवार को समाप्त

हुआ था। कवि जी कहते हैं कि इस पर प्रसन्न हो गुरु जी ने उन्हें "अरब खरब" (अत्यन्त) धन दिया। इसी अनुवाद में यह आशीर्वाद भी लिखा हुआ है—

जौ लौं धरन प्रकास गिर, चन्द सूर सुर इन्द।
तौ लौं चिर जीवै जगत, साहिब गुरु गोबिन्द ॥

मङ्गल कवि जी जैसी अच्छी कविता ब्रज भाषा में करते थे वैसी ही सुन्दर कविता पञ्जाबी बोली में भी रचते थे।

अनन्द दा वाजा नित्त वज्जदा अनन्दपुर,
सुणि सुणि सुद्ध भुल्दी नरनाह दी।
भी भया भभीछण नूँ लङ्कागढ़ वस्सणे दा,
फेर असवारी औंवदी महाँवाहु दी ॥
चल छड्ड वलि जाइ छपिआ पताल विच्च,
फते दी निशानी जेंदे हार दरगाह दी।
सवण न देंदी सुख दुज्जणा नूँ रात दिणा,
नौबत गुविन्दसिंह गुरु पातशाह दी ॥ १ ॥

ऊपर नेस्स हूँ की, हाहि सुभ वेस्स हूँ की,
कास्मीर देस हूँ की, भरी आन धामरी।
वुनी कारीगर भारी, करी खूब गुलकारी,
पहिरैं सिखारी, मोल पावैं लाख दामरी ॥
मान हूँ को जीन लैनि, ऐसी सोभा देह देनि,
"मङ्गल" सुकवि ज्यों कन्हैया जी की कामरी।
स्याम, सेत, पीरी, लाल, जरद, सबज रङ्ग,
गुरु जी गोबिन्द ऐसी देनि मौज पामरी ॥ २ ॥

जाचे ध्रू पायो है अमरपद सुरलोक,
नामा जू के जाचे दियो देहरा फिराइ जी।
विपदा मैं लङ्का दीनी जाचे ते विभीखन को,
"मङ्गल" सु कवि जाचौं मङ्गल सुनाइ जी॥
द्रोपती नगन होति जाच्यो सभा माहिं ठाँढ़े,
अम्बर लौं अम्बर मही पै रहे छाइ जी।
ऐसो दान दैवे को न कोऊ सतिगुरु विना,
और कौ न जाचिये विना गोविन्द राइ जी॥ ३॥

पूरन पुरख अवतार आनि लीन आप,
जाके दरबार मन चित्तवै सो पाइयै।
घटि घटि बासी अविनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइयै॥
नौमे गुरु नन्द जग वन्द, तेग त्याग पूरो,
"मङ्गल" सु कवि कहि मङ्गल सुथाइयै।
आनन्द को दाता गुरु साहिव गोविन्द राइ,
चाहै जौ आनन्द: तौ आनन्दपुर आइयै॥ ४॥

भावैं जाइ तीरथ भ्रमति सेतु वन्द हूँ लौं,
भावैं जाइ कन्दरा मैं कन्द मूल खाइये।
भावैं देह द्वारका दगध करै छापे लाइ,
भावैं कासी माँहि जाइ जुग्ग लौं वसाइये॥
भावैं पूजो देहरे दिवाले सभि जग्ग हूँ के,
भावैं खट दरसन के भेख मैं फिराइये।
जौ तूँ चाहैं मनसा को "मङ्गल" तुरति फल,
गोविन्द गुरु पै एक मौज हूँ मैं पाइये॥ ५॥

(५) सुदामा कवि ।

एक सङ्ग पढ़े अवन्तका सन्दीपन के,
सोई सुध आई तो बुलाइ बूझी बामा मैं ।
पुङ्गी फल होति तौ असीस देतो नाथ जी कौ,
तन्दुल ले दीजै बाँध लीजै फटे जामा मैं ॥
दीन दुआर सुनि कै दयार दरबार मिले,
एतो कुछ दीनो पाई अगनति सामा मैं ।
प्रीत करि जाने गुरु गोबिन्द कै माने ताँते,
वहै तूँ गोबिन्द वहै बामन "सुदामा" मैं ॥

(६) सुन्दर कवि

साधन को सिद्ध सरणागत समर सिन्धु,
सुधाधर "सुन्दर" सरस पद पायो है ।
कुल को कलस, कवि कामना को काम तरु,
कोप किये काल, कवियन गुन गायो है ॥
देवन मैं दानव मैं मानव मुनिनि हूँ मैं,
जाको जस जाहर जहान चलि आयो है ।
तेग साचो देग साचो सूरमा सरन साचो,
साचो पातिसाह गुरु गोबिन्द कहायो है ॥ १ ॥

वेदन मैं स्याम सुनो, सिन्धु मरजादा,
मेरु मण्डल मही मैं, गुरुआई गुन गाए हो ।
सरम के सागर, सपूतन के सिरमौर,
"सुन्दर" सुधाधर से सुन्दर गनाए हो ॥

रण में इम धूस करो अत हो,
मनो खेलत कानर फागन को।
इह भांति गुलाबु गुलाल लिये,
करि जाति जमात के डारन को ॥१७॥५८॥
काहू के मात पिता सुत है अरु,
काहू के भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन,
काहू के गेह विराजत नारी॥
काहू के धाम माँहि निधि राजत,
आपस मों करि हैं हित भारी।
होहु दयाल कृपा करि कै प्रभु,
गोबिन्द जी मुहि टेक तिहारी ॥४५॥८१४

(८) कवि हंसराम।

कवि हंसराम ने महाभारत के कर्ण पर्व्व का भाषानुवाद किया था जिस पर उन्हें ६००००) रु० इनाम मिला जैसा कि कविजी ने स्वयम् लिखा है—

प्रथम कृपा करि राख कर, गुरू गोविन्द उदार।
टका करे बखसीस तब, मोकों साठ हजार॥

कवि हंसराम भी गुरु दरबार के प्रधान कवियों में से हुए हैं।

अवध अन्हाए कहाँ, तिलक बनाए कहाँ,
द्वारका छपाए कहाँ तन ताप्यति है।
कोविद कहाए कहाँ, वेनी के मुण्डाए कहाँ,
काशी के बसाए कहाँ, लाहु लम्पियति है॥

जिनको विजय पारावार पार देखियति,
प्रबल प्रचण्ड सुने जाहर जहान हैं।
जिनको न दरबार पाइयति महीनिक लौं,
तेऊ तेरे दरबार देखे दरबान हैं॥ ४॥

करन से दाता हो, विधाता महि मण्डल के,
वैरी के बिहण्डन प्रचण्ड भूअ भार को।
पुरख पुरान से पुरानन में गाइयति,
साचे गुरु गोविन्द अधार निराधार को॥
जौन तेरी कीरति जगातो जम्बू दीप कै कै,
पसरे उजारो परसति पारावार को।
गुरुन के बंस चल आई "हंसराम" सदा,
गुनी सों उदार, तोरादार तरवार को॥ ५॥

झुलति अपर नरेस पत्ति हत्थहि जिम हल्लै।
सूखति साहर सलल, सङ्क धूअ धाम न चल्लै॥
झलक खेल खलभलति भैल भगहि तलोक महिं।
पलक पेल गढि लेति हेत हुङ्कति सु जङ्ग महिं॥
कहि "हंसराम" सति सिमर कै सकुच रहति दिगपाल तब।
धसमसति धरन दल भार ते सो विरच राइ गोविन्द जब॥ ६।

दुन्दभी धुङ्कारे बाजे मानो जलधर गाजे,
राजति निसान भय भानु छिपे जाति हैं।
हाथिन के हलका हजारनि, गने को हय,
जटति जवाहर जो जगमग गात हैं॥

राम छत्रि बन्ध पर, राम दसकन्ध पर,
राम जरासिन्ध पर, ज्यैं ज्यों नर सिंह हैं ॥
रुद्र जिउँ मार पर, वैनतेय मार पर,
पौन दीप मार पर, मार पर सिंह है ॥
सूरतम बृन्द पर, सूर रण दुन्द पर,
सूर दिती नन्द पर, दूजे नरसिंह है ।
काल सरबंस पर, दावा बन बंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर, श्री गोबिन्द सिंह है ॥ ७ ॥
सतिजुग बावन सरूप ह्वै न उपजति,
बलि कर जग्ग सुर पुरि दैंत बासते ।
भनति "सन्तोख सिंह" त्रेतै जो न रामचन्द,
रावन को राज रहे कोऊ न बिनासते ॥
द्वापर मैं स्याम घन होते न करति कौन,
दोखीन को दुःख, सुख सन्तन के बासते ।
तैसे कलि काल माँहिं गुरू रूप होवति न,
कौन हिन्दवानो राख धर्म्म को प्रकासते ॥ ८ ॥
छाइ जाती एकता, अनेकता बिलाइ जाती,
होवती कुचीलता कतेबन कुरान की ।
पाप ही प्रपक्क जाते, धरम धसक्क जाते,
बरन गरक्क जाते सहित बिधान की ॥
देवी देव देहरे "सन्तोख सिंह" दूर होते,
रीति मिट जाती कथा बेदन पुरान की ।
श्री गुरु गोबिन्द सिंह पावन परम सूर,
मूरति न होती जौ पै करुणानिधान की ॥ ९ ॥

* सत्य श्री अकाल *